योगवासिष्ठ से चुने हुये कुछ श्लोक

भाषा सहित

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने

अपने प्यारे पौत्रों के लिये छपवाये ॥

चौथीबार

लखनऊ 373

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित

सन् १९२० ई०

सर्वाधिकार रक्षित हैं।

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

श्रीगणेशाय नमः॥

अन्यच्च तातातितरामरम्ये
मनोरमे चेह जगत्स्वरूपे।
न किञ्चिदायाति तदर्थजातं
येनातिविश्रान्तिमुपैति चेतः॥ १॥

और भी हे तात! अत्यन्त अरम्य और मनोहर जो जगत् का स्वरूप है उस में। कोई पदार्थ भी नहीं प्राप्त होते हैं कि जिनसे चित्त विश्रान्ति को अर्थात् सुख को प्राप्त होवे॥ १॥

बाल्ये गते कल्पितकेलिलोले
मनोमृगे दारदरीषु जीर्णे।
शरीरके जर्जरतां प्रयाते
विदूयते केवलमेव लोकः॥ २॥

बाल्यावस्था के आने से कैसी कि कल्पित खेलों करके चञ्चल मनरूप मृग स्त्रीरूपी कन्दरा में जीर्ण होता हुआ। शरीर के जर्जर होनेसे लोग केवल विशेष तापही को पावते हैं॥ २॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जरातुषाराभिहतां शरीर-
सरोजिनीं दूरतरे विमुच्य ।
क्षणाद्गते जीवितचञ्चरीके
जनस्य संसारसरोवशुष्कम् ॥ ३ ॥

जरा तुषार से हत शरीररूपी कमलिनी को जब अत्यन्त दूर त्यागि के। क्षणमात्र जीव-रूप भँवरा चला जाता है तब जनों का संसार-रूपी सरोवर सूख जाताहै ॥ ३ ॥

यदा यदा पाकमुपैति नूनं
तदा तदेयं रतिमातनोति ।
जराभरानल्पनवप्रसूना-
विजर्जरा कायलता नराणाम् ॥४॥

जैसे जैसे पाक को प्राप्त होती है अर्थात् पुष्ट होती है निश्चय करके तैसे २ ही (मृत्युके) प्रीति को विस्तारती है । जरारूपी भारयुक्त बहुत नवीन फूल-वाली विशेष जीर्ण शरीररूपी लता पुरुषोंकी ॥ ४ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तृष्णा नदी सारतरप्रवाह-
ग्रस्ताखिलानन्तपदार्थजाता ।
तटस्थसन्तोषसुवृक्षमूल-
निकाषदक्षा वहतीह लोके ॥५॥

तृष्णारूपी नदी के अत्यन्त प्रवाह के वेगसे ग्रसे हुए सम्पूर्ण पदार्थमात्र हैं । तीर में स्थित सन्तोषरूपी सुन्दर वृक्षके मूल काटनेमें इस लोकमें बहुत समर्थ बहती है ॥ ५ ॥

शरीरनौश्चर्मनिबन्धबद्धा
भवाम्बुधावाकुलिताभ्रमन्ती ।
प्रलोड्यते पञ्चभिरिन्द्रियाख्यै-
रधोभवन्ती मकरैरधीरा ॥६॥

शरीररूपी नौका चामरूप बन्धनसे बँधीहुई (चर्मतरि दक्षिण देशमें प्रसिद्ध है) संसारसमुद्र में व्याकुल भ्रमती है पञ्चइन्द्रियरूपी ग्राहों करके इधर उधर चलाई हुई डूबती उतरातीहै नहींहैं विवेकी धीर जिसमें ॥ ६ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तृष्णालताकाननचारिणोमी-
शाखाशतं काममहीधरेषु ।
परिभ्रमन्तः क्षपयन्ति कालं
मनोमृगा नो फलमाप्नुवन्ति ॥७॥

तृष्णालता प्रधानवन में विचरनेवाले कामवृक्ष के सैकड़ों शाखाओंमें । चारों तरफ़ घूमते हुए काल को बितावतेहैं मनरूपी मृग कुछ फलको नहीं पावते हैं ॥७॥

कृच्छ्रेषु दूरास्तविषादमोहाः
स्वास्थेषु नोत्सिक्तमनोभिरामाः ।
सुदुर्लभाः सम्प्रति सुन्दरीभि-
रनाहतान्तःकरणा महान्तः ॥८॥

आपदाओं में दूरहीसे त्याग दियाहै विषाद मोह को और संपदाओं में गर्भरहित मन करके सुखयुक्त हैं । अत्यन्त दुर्लभ इस कालमें स्त्रियों करके नहीं है हत मन जिन्होंके ऐसे सन्त ॥ ८ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

तरन्ति मातङ्गघटातरङ्गं
रणाम्बुधिं ये मयि ते न शूराः ।
शूरास्त एवेह मनस्तरङ्गं
देहेन्द्रियाम्भोधिमिमं तरन्ति ॥ ९ ॥

तरते हैं हाथियों के समूहरूपी तरङ्गों से संग्राममें जो मेरी समझ में सो शूरमा नहीं हैं। शूर वही हैं कि इसलोक में मनरूपी तरङ्ग के देहेन्द्रियादिक समुद्रको तरते हैं॥ ९॥

अक्लिष्टपर्यन्तफलाभिरामा
न दृश्यते कस्यचिदेव काचित् ।
क्रियादुराशाहतचित्तवृत्ति-
र्यामेत्य विश्रान्तिमुपैति लोकः ॥ १० ॥

क्लेशरहित संसारावसान फल तक सुख देनेवाली नहीं देखते हैं किसीकी भी ऐसी कोई भी। क्रिया खोटी आशासे हत भई चित्तवृत्ति पुरुष जिसको पाय के सुख को पावें ॥ १० ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कीर्त्या जगद्दिक्कुहरं प्रतापैः
श्रिया गृहं सत्त्वबलेन लक्ष्मीम् ।
ये पूरयन्त्यक्षतधैर्यबन्धा
न ते जगत्यां सुलभा महान्तः ॥ ११ ॥

कीर्ति करके जगत् को प्रतापों करके दिशाओं को सम्पदा करके गृह को अपने पुरुषार्थ करके लक्ष्मी को। जो पूर्ण करते हैं नहीं नाश भये हैं धैर्यबन्ध जिनके सो ऐसे सन्त जगत् में सुलभ नहीं हैं ॥ ११ ॥

अप्यन्तरस्थं गिरिशैलभित्ते-
र्वज्रालयाभ्यन्तरसंस्थितं वा ।
सर्वं समायान्ति ससिद्धिवेगाः
सर्वाश्रियः सन्ततमापदश्च ॥ १२ ॥

निश्चय करके पर्वत शिला के भीतमें अथवा अभेद्य गृहके बीच स्थित सब सभाग्य पुरुषों को अणिमादि सिद्धिके वेग सहित सब सम्पदा निरन्तर आपदा भी आवती हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पुत्राश्च दाराश्च धनं च बुद्ध्या
प्रकल्पते तात रसायनाभम् ।
सर्वं तु तन्नोपकरोत्यथान्ते
यत्रातिरम्या विषमूर्च्छनैव ॥ १३ ॥

पुत्र, दारा, धन, बुद्धि करके भ्रान्ति से हे तात ! जो अमृततुल्य कलपे जाते हैं । सो पूर्वोक्त सब मृत्युकाल में तो कुछ उपकार नहीं करते हैं अतिरम्य भोगविषय भी दुःख के वास्ते ही होते हैं ॥ १३ ॥

विषादयुक्तो विषमामवस्था-
मुपागतः कायवयोवसाने ।
भावान्स्मरन्स्वानिह धर्मरिक्तान्
जन्तुर्जरावानिह दह्यतेऽन्तः ॥१४॥

विषादसहित बड़ी कठिन अवस्था को प्राप्तहुआ शरीर आयु के अन्त में । भोगभावों को याद करता हुआ अपने इस लोकमें पुण्यरहित जीव वृद्धावस्था युक्त मनमें तपायमान होता है ॥ १४ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कामार्थधर्माप्तिकृतान्तराभिः
क्रियाभिरादौ दिवसानि नीत्वा।
चेतश्चलद्बर्हिणपिच्छलोलं
विश्रान्तिमागच्छतु केन पुंसः ॥१५॥

प्रथम धर्मार्थ कामकी प्राप्ति में फुरसत नहीं तथा लौकिक क्रियाओंमें दिनों को बिताय करके। चित्त जो है सो चलायमान मोरपंख जैसा चंचल किस प्रकारसे पुरुष विश्रान्ति को पावें ॥ १५ ॥

पुरोगतैरप्यनवाप्तरूपै-
स्तरङ्गिणीतुङ्गतरङ्गकल्पैः।
क्रियाफलैर्दैववशादुपेतै-
र्विडम्ब्यते भिन्नरुचिर्हि लोकः॥ १६॥

आगे प्राप्त भी अप्राप्तरूप नदी के तरङ्गवत् क्षणभंगुर अर्थात् नाशरूप। क्रिया के जो फल हैं सो दैववश से प्राप्त अनात्मरुचिवाले पुरुष केवल ठगे ही जाते हैं ॥ १६ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इमान्यमूनीति विभावितानि
कार्याण्यपर्यन्तमनोरमाणि ।
जनस्य जायाजनरञ्जनेन
जवाज्जरान्तं जरयन्ति चेतः ॥ १७ ॥

इधर उधर के कार्यों की भावना करके चित्त को जीर्ण करते हैं कैसे कार्य हैं जबतक नाश नहीं होते तबतक अच्छे लगते हैं और स्त्रियों के राग में भी चित्त को जीर्ण करके जरा के अन्त में नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

पर्णानि जीर्णानि यथा तरूणां
समेत्य जन्माशु लयं प्रयान्ति ।
तथैव लोकाः स्वविवेकहीनाः
समेत्य गच्छन्ति कुतोऽप्यहोभिः ॥ १८ ॥

जैसे वृक्ष के सूखे पत्ते इकट्ठे होयके नाश को प्राप्त होते हैं । तैसे आत्मज्ञान से रहित जो पुरुष हैं सो इकट्ठे होके थोड़ेही दिनोंमें नाश हो जाते हैं ॥ १८ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इतस्ततो दूरतरं विहृत्य
प्रविश्य गेहं दिवसावसाने।
विवेकिलोकाश्रयसाधुकर्म-
रिक्तेऽह्नि रात्रौ क उपैति निद्राम् ॥ १६ ॥

इधर उधर अति दूर विहार करके दिनके अन्त में गृह में प्रवेश करके विवेकी जनके आधीन अच्छे कर्मों से राहित दिन के रहते रात्रि में मूढ़के विना कौन निद्रा को प्राप्त होवे ॥ १६ ॥

विद्राविते शत्रुजने समस्ते
समागतायामभितश्च लक्ष्म्याम्।
सेव्यन्त एतानि सुखानि याव-
त्तावत्समायाति कुतोऽपि मृत्युः ॥ २० ॥

जितने काल में शत्रु के भगावते और लक्ष्मी के चारों तरफ़से आवते होते। जितने काल में इन सब सुखों के सेवते होते तबतक क्या जानें कहां तें मृत्यु आय जाता है ॥ २० ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कुतोऽपि संवर्द्धिततुच्छरूपै-
भावैरमीभिः क्षणनष्टदुष्टैः ।
विलोड्यमाना जनता जगत्यां
न वेत्त्युपायातमहो न यातम् ॥ २१ ॥

कोई हेतु से भी बढ़ाये गये जो यह विषय सो क्षणमात्र में नष्ट होनेवाले उन्हों करके जगत् में जीव-समूह भ्रमाये हुए समीप में आवते मृत्यु को नहीं जानते हैं बड़ा आश्चर्य है ॥ २१ ॥

प्रियासुभिः कालमुखं क्रियन्ते
जनैडकास्ते हतकर्मबद्धाः ।
यैः पीनतामेव बलादुपेत्य
शरीरबाधेन न ते भवन्ति ॥ २२ ॥

प्रिय प्राणरूपी यजमानों करके पुरुषरूपी पशु निन्दित कर्मरूपी खंभे में बँधे हुए मृत्यु के मुख को पहुँचाये जाते हैं । और जिन्होंने विषयासक्ति से जबरदस्ती शरीरको पोषण करते हुए रोगरूपी ऋत्विजों करके शरीरनाश से असत होते हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

अजस्रमागच्छति सत्वरैव-
मनारतङ्गच्छति सत्वरैव ।
कुतोपिलोलाजनता जगत्यां
तरङ्गमालाक्षणभङ्गुरेव ॥ २३ ॥

निरन्तर जल्दी से जैसे आवते हैं तैसेही जल्दी से चले भी जाते हैं अर्थात् बारम्बार जन्मते मरते रहते हैं । किसी हेतुसे भी अति चपल जो जगत् में जीवसमूह हैं सो तरङ्गों की न्याईं क्षणभंगुर हैं ॥ २३ ॥

प्राणापहारैकपरा नराणां
मनो मनोहारितया हरन्ति ।
रक्तच्छदाश्चञ्चलषट्पदाक्ष्यो
विषद्रुमालोललताः स्त्रियश्च ॥२४॥

पुरुषों के प्राण हरनेमें परायण और मनोंको हरने वालियां । और पत्तेवाली लाल दांतवाली अथवा वस्त्र-वाली चंचल भवँरों के नेत्रवाली विषवृक्ष की न्याईं स्त्रीरूपी लता हैं ॥ २४ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

इतोन्यतश्चोपगता मुधैव
समानसङ्केतनिबद्धभावाः ।
यात्रासमासंगसमानराणां
कलत्रमित्रव्यवहारमाया ॥ २५ ॥

मनुष्यलोकमें तथा स्वर्ग—नरकादिकों में अपने २ अभिप्रायों करके कल्पित पदार्थ सब झूठे हैं। यात्राके समाज की न्याईं स्त्री मित्र व्यवहार धनादिक सब मनोमात्र हैं ॥ २५ ॥

प्रदीपशान्तिष्विव भुक्तभूरि-
दशास्वतिस्नेहनिबन्धनीषु ।
संसारमालासु चलाचलासु
न ज्ञायते तत्त्वमतात्त्विकीषु ॥ २६ ॥

दीपकके बुझने की न्याईं भुक्त जो बाल्यादि अवस्था अर्थात् बत्ती तुल्य स्नेहरूपी तेल के आधीन। जन्म मरणरूपी ज्वाला की शान्ति और चञ्चल तथा झूठी इन्हों में सच्चा तत्त्व नहीं जाना जाता है ॥ २६ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

संसारसंरम्भकुचक्रिकेयं
प्रावृट्पयोबुद्बुदभङ्गुरापि ।
असावधानस्य जनस्य बुद्धौ
चिरस्थितप्रत्ययमातनोति ॥ २७ ॥

संसार की प्रवृत्ति जो है सो कुलालचक्र की न्याईं तथा वर्षाकाल के जलबुद्बुद की न्याईं अनित्यभी है । तौभी असावधान पुरुष की बुद्धिमें बहुत स्थिर विश्वास को विस्तार करती है ॥ २७ ॥

शोभोज्ज्वलादैववशाद्विनष्टा
गुणाः स्थिताः सम्प्रति जर्जरत्वे ।
आश्वासनादूरतरं प्रयाता
जनस्य हेमन्त इवाम्बुजस्य॥२८॥

पुरुषों के यौवनरूपी शरदृऋतु में शोभा से उज्ज्वल गुण सुगन्धादिक सो वृद्धारूपी हेमन्त में नष्ट होते हैं चित्तकी समाधानता और आस्था भी अति दूर चली जाती है जैसे हिमऋतुमें कमलों की ॥२८॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

पुनःपुनर्दैववशादुपेत्य
स्वदेहभारेण कृतोपकारः।
विलूयते यत्र तरुः कुठारै-
राश्वासने तत्र हि कः प्रसंगः ॥२९॥

बारम्बार दैववश से फल-पुष्पादि सम्वृद्धिको प्राप्त होकर पुरुषों का उपकार करके भी। वृक्ष जिस संसार में कुठारों करके काटे जाते हैं बारम्बार तिसमें क्षण २ में अपराधी पुरुषों के उपकारमें क्या विश्वास है ॥२६॥

मनोरमस्याप्यतिदोषवृत्ते-
रन्तर्विघाताय समुत्थितस्य।
विषद्रुमस्येव जनस्य संगा-
दासाद्यते सम्प्रति मूर्च्छनैव ॥ ३० ॥

मनको प्रीति करनेवाला भी अति दोष वृत्ति अर्थात् स्नेह भोग तथा दाह भ्रमणादिकों को देनेवाला भीतर नाश के वास्ते उठा है। ऐसे विषवृक्षकी न्याईं जन के संगसे मूढ़ता अथवा दुःखही प्राप्त होता है यही बड़ा दोष है॥ ३० ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

कास्ता दृशो यासु न सन्ति दोषाः
कास्ता दिशो यासु न दुःखदाहः ।
कास्ताः प्रजा यासु न भङ्गुरत्वं
कास्ताःक्रियायासुन नाम माया॥३१॥

कौन संसार में दृष्टियां हैं जिनमें दोष नहीं है कौन दिशा हैं जिनमें दुःख तथा दाह नहीं हैं । कौन वह प्रजा हैं जिनमें भंगुरता नहीं और कौन वह लौकिकी क्रिया हैं जिनमें छल नहीं है ॥ ३१ ॥

कल्पाभिधानक्षणजीविनो हि
कल्पौघसंख्याकलनेविरिञ्च्याः ।
अतः कलाशालिनि कालजाले
लघुत्वदीर्घत्वधियोऽप्यसत्याः ॥ ३२ ॥

अतीतानगत कल्पोंकी संख्या के न जानने में विष्णु रुद्रादिकों की दृष्टियां क्षणमात्रही हैं तो ब्रह्माके लोक की प्रजा भी क्षणमात्र हैं । इस वास्ते अवयव-शाली कालसमूह में थोड़े काल बहुत काल जीवनकी बुद्धियां भी झूठी हैं ॥ ३२ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

सर्वत्र पाषाणमया महीध्रा
मृदामहीदारुभिरेव वृक्षाः ।
मांसैर्जनाः पौरुषबद्धभावा-
नापूर्वमस्तीह विकारहीनम् ॥ ३३ ॥

सब जगह पत्थररूप पर्वत हैं मट्टीरूप धरती है और काष्ठमय वृक्ष हैं । मांसरूप पुरुष हैं व्यवहार के वास्ते पुरुषोंके संकेतों करके रचित कोई अच्छेपदार्थ विकार-हीन नहीं हैं ॥ ३३ ॥

आलोक्यते चेतनयानुविद्धा -
पयोनुबद्धोस्तनयोनभःस्थाः ।
पृथग्विभागेन पदार्थलक्ष्म्या
एतज्जगन्नेतरदस्ति किंचित् ॥ ३४ ॥

देखा जाता है बुद्धि करके पयरूप कारण अथवा लकड़ी करके सम्बद्ध जो अग्नि तथा वायु आकाश पृथिवी आदिक । पूर्वोक्त सब पञ्चभूतों से मिले हुए जो नानापदार्थ लक्ष्मीयुक्त भूतों से जुदा अज्ञानियों से तथा ज्ञानियों से तो पञ्चभूत रूपै देखे जाते हैं ॥ ३४ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

चमत्कृतिश्चेह मनस्विलोक-
चेतश्चमत्कारकरी नराणाम् ।
स्वप्नेपि साधो विषयं कदाचि-
त्केषांचिदभ्येति न चित्ररूपा ॥ ३५ ॥

मनुष्यलोक में नरों के चित्त की चमत्कार करने वाली जो वृत्ति है। हे साधो! किसी को कदाचित् स्वप्न में भी मिले तो क्या आश्चर्य है ॥ ३५ ॥

अद्यापि यातेऽपि च कल्पनाया
आकाशवल्लीफलवन्महत्त्वे ।
उदेति नोल्लोभलवाहताना-
मुदारवृत्तान्तमयी कथैव ॥ ३६ ॥

अब तक भी प्रथम अवस्था के जाने से उत्तर अवस्थामें आकाश लता फल की न्याई झूठी भोगासक्ति तथा अज्ञान के बढ़ने से । लोभलवमात्र के हतको तो सर्वोत्तम परमात्मा के स्वरूप निर्वाण वार्त्तायुक्त कथा ही नहीं उदय होती है ॥ ३६ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

आदातुमिच्छन् पदमुत्तमानां
स्वचेतसैवापहतोऽद्यलोकः ।
पतत्यशङ्कं पशुरद्रिकूटा-
दानीलवल्लीफलवाञ्छयैव ॥ ३७ ॥

उत्तम भोगवाले पुरुषोंके स्थान की समता अथवा राज्य धनादिकों को लेने की इच्छा करके हतचित्त होके प्रथम अवस्थाही में निश्शङ्क गिर पड़ते हैं जैसे पर्वत शिखर से पशु गिरैं हरी लता विषम करीलादि वृक्ष तथा फल की इच्छा करके ॥ ३७ ॥

अवान्तरन्यस्तनिरर्थकांश-
च्छायालतापत्रफलप्रसूनाः ।
शरीरएव क्षतसम्पदश्च
श्वभ्रद्रुमा अद्यतना नराश्च ॥ ३८ ॥

अति कठिन उदररूपी गर्त्त में ही रखा जो व्यर्थ छाया तथा लता पत्ते फल फूल जिन्हों के । ऐसे जो आजकल के मनुष्यरूपी श्वभ्रवृक्ष तथा शरीर ही में नाशवान् सम्पदावाले हैं ॥ ३८ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

क्वचिज्जना मार्दवसुन्दरेषु
क्वचित्कठोरेषु च संचरन्ति ।
देशान्तरालेषु निरन्तरेषु
वनान्तखण्डेष्विव कृष्णसाराः॥३९॥

कहीं धर्मात्मा जन कोमल सुन्दर दया क्षमा विनयादि में कहीं कठोर क्रोध लोभ निठुरतादिमें दुष्टजन विचरते हैं। तैसे अपने २ स्वभावानुसार चित्त भूमियोंमें जैसे अनेक वनभूमियोंके अवयवोंमें मृग विचरतेहैं॥३९॥

धातुर्नवानि दिवसम्प्रतिभीषणानि
रम्याणि वाविलुलितान्ततमाकुलानि ।
कार्याणि कष्टफलपाकहतोदयानि
विस्मापयन्ति न शवस्य मनांसि केषाम्॥४०॥

मृतक तुल्य दैवका नवीन दिन दिन में फलसे भय कर विना विचारे मनोहर रागादिकोंसे व्याकुल करके व्याकुल। ऐसे जो कार्य हैं अन्तमें दुःखफल से दूषित भोग सुखवाले सो किस विवेकी के चित्त को नहीं आश्चर्य करादेतेहैं॥४०॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor

जनःकामासक्तोविविधकुकलाचेष्टनपरः
सतुस्वप्नेप्यस्मिन् जगति सुलभो नाद्य सुजनः ।
क्रियादुःखासङ्गाविधुरविधुरानूनमखिला
नजाने नेतव्या कथमिव दशा जीवितमयी॥४१॥

सामान्यजन विषयों में आसक्त तथा अनेककुटिल चातुरी चेष्टा में तत्पर अर्थात् फँसा हुआ । और विवेकी पुरुष तो इस जगत् में स्वप्नमें भी सुलभ इस काल में नहीं है । निश्चय करके सब क्रिया दुःख के साधन तथा फल से रहित नहीं हैं । ऐसी हालत में हमलोग नहीं जान सक्ते हैं कि जीवनरूपी दशा किसकी न्याईं अथवा किस प्रकार से बितावने योग्य है ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे निःश्रेयसविरोधिभावानित्यताप्रतिपादनं नाम वैराग्यप्रकरणे सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

CC-0. Digital Donation Received and Uploaded by eGangotri on behalf of Anonymous Donor